अथर्ववेद में वर्णित आयुर्वेद चिकित्सा के विभिन्न सोपानः एक अध्ययन

डॉ. रेशु तिवारी
जयपुर

संक्षेप :

अथर्ववेद में वर्णित विभिन्न प्रकार के चिकित्सा पद्धति जैसे औषध चिकित्सा, मानस चिकित्सा, अग्नि-यज्ञ चिकित्सा, सौर चिकित्सा, जल चिकित्सा, वात प्राण चिकित्सा, मृच्चिकित्सा, शल्य चिकित्सा आदि का इस शोध पत्र में संक्षिप्त उल्लेख किया गया है।

कुन्जी: मूलाधार, उद्धृत, योगदान, कृत्यादूषणी, व्रण, कुष्ठ, कृमिनाशक, पुष्टिकारक, चेतना आदि।

प्रस्तावना :

वेदों में भैषज्य के दृष्टिकोण से अथर्ववेद का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसे भैषज्य वेद भी कहा जाता है। अथर्ववेद को "भैषज्य वेद" संज्ञा दी गयी है ।ऋचः सामानि भेषजा यजूंषि होत्राब्रूम। भैषज्यवेद का अर्थ औषध वेद है। अथर्ववेद वैदिक चिकित्सा का महत्त्वपूर्ण एवं प्रामाणिक ग्रन्थ है। अथर्ववेद का उपवेद आयुर्वेद को माना जाता है। अथर्ववेद में भैषज्य के प्रायः सभी अंगों एवं उपांगों का उल्लेख प्राप्त होता है। अथर्ववेद तो भैषज्य शास्त्र का मूलाधार है। इस प्रकार अथर्ववेद में आयुर्वेद के विभिन्न अंगों का सम्बन्ध बताया गया है। प्राचीन वैदिक भैषज्य आधुनिक समृद्ध आयुर्वेद की आधार शिला है।

विषयवस्तु - अथर्ववेद में उल्लिखित आयुर्वेद के विभिन्न अंगों जैसे औषध चिकित्सा, मानस चिकित्सा, अग्नि-यज्ञ चिकित्सा, सौर चिकित्सा, मृच्चिकित्सा, जल चिकित्सा, शल्य चिकित्सा आदि का उल्लेख किया गया है।

1 औषध चिकित्सा

अथर्ववेद में चिकित्सा के विषय क्षेत्र में औषधियों का एक विशेष स्थान है, जिसमें औषध चिकित्सा का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इसलिए औषध मानव ही नहीं वरन् सम्पूर्ण जीव जगत् के लिए अमृत के तुल्य होती है। मनुष्य के पीड़ा हरण में औषधियों का विशेष योगदान है। अथर्ववेद में प्रायः अनेक सूक्त औषध विषयक है। सैकड़ो मन्त्रों में औषधियों के गुण, धर्म की चर्चा है। विभिन्न रोगों के लिए अनेक प्रकार की औषधियों का उल्लेख किया गया है। अथर्ववेद में औषधियों का भण्डार है। औषधि चिकित्सा के सैकड़ों प्रमाण अथर्ववेद से यहाँ पर उद्धृत किये जा सकते हैं। यहाँ पर अथर्ववेद के एक सूक्त में एक ही मन्त्र में तीन औषधियों का उल्लेख प्राप्त होता है-

जीवलां न धारिषा जीवन्तीमोषधिमहम्।
अरुन्धन्ती मुन्नयन्तीं पुष्पा मधुमती मिह हुवेऽस्मा अरिष्टतातये ।।'

अर्थात् इस रोगी के स्वास्थ्य लाभार्थ में (भिषक) हानि न पहुँचाने वाली, आयुप्रद जीवन्ती एवं जीवला नामक औषधि, रोगी की रोग मुक्ति में प्रगति करने वाली (रुग्णावस्था में सत्वर, सुधार लाने वाली) अरुन्धती नामक औषधि और मधुमती एवं पुष्पा नामक औषधि का आह्वान करता हूँ। अथवा इन औषधियों के सेवन का उपदेश करता हूँ। इसी सूक्त के एक अन्य मन्त्र में विषहर, बलास, (कफरोग) नाशनी, कृत्यादूषणी (कृत्याओं का नाश करने वाली) आदि औषधियों का उल्लेख है-

उन्मु चन्तीर्विवरुणा उग्रा या विषदूषणीः।
अथो बलासनाशनीः कृत्यादूषणीश्च यास्ताइहा यन्तवोषधीः ।।२

अथर्ववेद के कतिपय दो सूक्तों में क्रमशः कुष्ठ (कूठ) नामक औषधि एवं लाक्षा (सिलाची) नामक औषधि का वर्णन है। यहाँ कुष्ठ (कूठ) नामक औषधि एवं लाक्षा (सिलाची) नामक औषधि का वर्णन है। यहाँ कुष्ठ (कूठ) को तक्मनाशन एवं लाक्षा को व्रणों को नष्ट करने वाली कहा गया है।

अर्थात् इसके द्वारा रोगों से मुक्त होने की बात कही गई है। इस प्रकार अथर्ववेद में औषध चिकित्सा के अनेक प्रसंगों का उल्लेख प्राप्त होता है। अथर्ववेद में औषध चिकित्सा एक पूर्ण चिकित्सा के रूप में विकसित थी।

2 मानस चिकित्सा

विभिन्न प्रकार के रोगों का सामना एवं उपचार जहाँ औषधियों आदि के द्वारा होता है. वहाँ मानस चिकित्सा द्वारा भी किया जाता है। मानस चिकित्सा में रोगी को ऐसा अनुभव कराया जाता है कि वह रोग का सामना करने में समर्थ है एवं धीरे-धीरे रोगी के रोग का उपचार हो रहा है अर्थात् रोगी ठीक हो रहा है।

मन ही मनुष्य के बन्धन एवं मोक्ष का कारण है- "मन के जीते जीत है मन के हारे हार है"। **"मनोजितं येन जगज्जितं तेन"** इत्यादि अनेक उक्तियों मन के महत्त्व को बताती हैं। अथर्ववेद में 'त्वं मनसा चिकित्सीःकहकर स्पष्ट रूप से मानस चिकित्सा का उल्लेख किया गया है। आचार्य चरक ने मन को रोगों का कारण मानते हुए मानस रोगों एवं मानस चिकित्साओं का उल्लेख किया है।

आचार्य चरक के अनुसार मानस रोग तमोगुण और (च० सू० 45) रजोगुण के विकारों से प्राप्त होते हैं। अथर्ववेद के एक मन्त्र में मन को रोगों का कारण एवं रोगों का निवारक भी कहा है। आत्मबल का विकास मनोरोगों एवं कायिक रोगों का शमन करने वाला है । अथर्ववेद में उल्लेख है कि **मत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम् ।**

तस्मान्त्वां मृत्योर्गोपतेरुद्धराभि स मा बिभेः।
सोऽरिष्ट न मरिष्यसि न मरिष्यसि मा बिभे ।।5।।

इस प्रकार मानस चिकित्सक भिन्न-भिन्न प्रकार से रोगी के मन में मनोबल बढ़ाकर, संकल्प शक्ति पैदा करके तथा इच्छा शक्ति जागृत कर रोग मुक्त करने में सफल होता है। अन्यत्र भी "अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि मम वशे हृदयानि वः कृणोमि ।। आदि मन के वशीकरण द्वारा मानस चिकित्सा का साक्ष्य प्राप्त होता है।

मानस चिकित्सा में रोगी को बिना औषधि के ही ठीक करने का उपक्रम होता है। रोगी के मन में एक अपूर्व चेतना शक्ति जागृत होती है। जिससे वह स्वस्थ होने का अनुभव प्राप्त करने लगता है- "यत्ते मनस्त्वयि तद् धारयामि"। रोगी का आत्मबल रोग के कारणों को दूर करने में सहायता प्राप्त करता है। मानस चिकित्सा आधुनिक काल में लोकप्रिय हो रही है। इससे असाध्य रोगों को विशेष रूप से मानसिक एवं बौद्धिक रोगों को ठीक किया जाता है। मानस चिकित्सा में अपने स्वतः मन की पवित्रता, सच्चरित्रता एवं आचार-विचार की शुद्धि पर बल दिया जाता हैं।

आचार्य वाग्भट्ट ने 'अष्टांगहृदयम्' में **'करुणार्दै मनः शुद्धं सर्वरोगविनाशनम्"** कहा जबकि मन की सात्विकता को सर्वरोगनाशक बताया है। इससे यह सिद्ध होता है कि सत्यनिष्ठा एवं मनोबल से सब प्रकार के रोगों को शान्त किया जा सकता है।

3 अग्नि-यज्ञ-चिकित्सा

यज्ञाग्नि के द्वारा की गई चिकित्सा अथवा सम्पाद्यमान चिकित्सा को अग्नि चिकित्सा या यज्ञ चिकित्सा कहते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा व पंचमहाभूत चिकित्सा में इसका प्रमुख स्थान है। इसके अनेक रूप हैं। अग्नि का साक्षात् सेवन (जठरेण हुताशनम्), शरीर के अंगों प्रत्यंगों को अग्नि द्वारा ताप देना, अग्नि में गुग्गुलु, गिलोय. नीम आदि कृमिनाशक द्रव्य डालकर होम करना, पत्थर, ईंट, गर्म बोतल, हीटर आदि द्वारा रोग ग्रस्त अंगों को सेकना, कमरा एवं एकदेश को गर्म करना धूपदान एवं विद्युत चालित यन्त्रों द्वारा चिकित्सा करना आदि अनेक प्रकार की अग्नि का सेवन किया जाता है। अग्नि के द्वारा चिकित्सा की बात सभी वेदों में कही गयी है। यज्ञ द्वारा भी चिकित्सा के अनेक प्रसंग वेदों में विद्यमान है। यज्ञ में सुगन्धित, पुष्टिकारक, मिष्ट तथा रोगनाशक अथवा रोगाणु नाशक, हानिकारक, कृमि-कीटादि-नाशक द्रव्य डालकर प्रज्वलित अग्नि में दग्ध किये जाते हैं। इनसे जलवायु शुद्ध तथा सुरभित होता है जिससे रोगाणु नष्ट होते हैं। वेदों में अग्नि एवं यज्ञ का अतिमहत्व प्राप्त होता है। अथर्ववेद में अग्नि तथा यज्ञ के महत्व की चिकित्सा में इनकी उपयोगिता के अनेक साक्ष्य उपलब्ध होते हैं। अथर्ववेद में अग्नि को सर्वरोग भेषज स्वीकार किया गया है। "अग्निष्कृणोतु भेषजम्"। सर्वविष उतारने के लिए सर्पदष्ट अंग को तप्त लौह से जलाकर सर्पविष को दूर किया जाता है।

अग्निर्विशमहेर्निरधात् सोमो निरणयीत्।
दंष्टारमन्वगाद् विषमहिरमत ।।१०

अथर्ववेद में कहा गया है कि रोगणणुओं को नष्ट करने के लिए अथवा रोगोत्पादक, कृमि-कीटादि को मारने के लिए अग्नि एवं यज्ञाग्नि में होम परमोपयोगी विधि है।

सर्वोषाच क्रिमीणां सर्वा सां क्रिमीणाम्।
भिनद्म्यश्मना शिरो दहाम्यग्निना मुखम् ।।"११

इस प्रकार रोगोत्पादक कृमिरक्षस्, यातुधान एवं यातुधानी, अमीबाआदि नामों से सम्बोधित कीटपतंगादि

रोगणणुओं का नाशक स्वीकार किया गया है। अग्नि तथा यज्ञाग्नि में भी गुग्गुलु आदि को जलाने से रोगाणुओं एवं हानिकारक कीट पतंगों का नाश होता है। इस प्रकार अथर्ववेद में उल्लेख प्राप्त होता है-

"यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते।"१२

'न तं यक्ष्मा अरुन्धते इत्यादि में गुल्गुलु की सुगन्ध को अग्नि में डालने पर कृमि-कीटादि रोगाणुओं को खा जाने वाली बताया है। रोगग्रस्त अंगों को अग्नि ताप देना, पीड़ा हरण का लोकप्रिय एवं सस्ता उपाय है।

4 सौर चिकित्सा

अथर्ववेद में सौर चिकित्सा का रूप अधिक विकसित प्रतीत होता है। सूर्य के ताप, प्रकाश एवं किरणों से होने वाली चिकित्सा को सौर चिकित्सा कहा जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा एवं पंच तत्त्व चिकित्सा में सौर चिकित्सा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वेदों में सूर्य के द्वारा पवित्रता उत्पन्न करने का कर्म, सूर्य के लिए प्रयुक्त विशेषण "शोचिष्केशं क्विक्षणम्" से सिद्ध होता है। यहाँ सूर्य के किरणों को शुद्धि करने वाली बताया गया है। गन्दगी से अनारोग्य एवं शुद्धि से आरोग्य सनातन सत्य है। अथर्ववेदीय प्रश्नोपनिषद् में यह उल्लेख है कि सूर्य जगत् के प्राणियों के लिए प्राण हैं-

आदित्यो ह वै प्राणः। यत्सर्वं प्रकाशयति,
तेन सर्वान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते।
प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः ।।"१३

जब सूर्य प्रकाशमान होता है। सब प्राणों को यह अपनी किरणों में रखता है। प्राण स्वरूप (शक्ति का स्रोत) बनकर उदय होता है। अथर्ववेद में उदयमान सूर्य को मृत्यु के कारणों (बीमारी, अशुद्धि, कृषि प्रजनन आदि) को नष्ट करने का उल्लेख प्राप्त होता है।

अग्निर्मा गोप्ता परि पातु विश्वत उद्यन्त्सूर्योनुदतां मृत्युपाशान्।
व्युच्छन्तीरुषसः पर्वता धवाः सहस्रं प्राणामय्यायतन्ताम् ।।
उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन रश्मिभिः।
ये अन्त क्रिमयो गवि ।।१४

अथर्ववेद में अन्यत्र सूर्य की अवरक्त किरणों (इन्फ्रा रेड) को हृदय की बीमारियों तथा खून की कमी को दूर करने का उल्लेख प्राप्त होता है। अधोलिखित मन्त्र में "गो" शब्द सूर्य के किरणों के साथ-२ लाल रंग की गौ के दूग्ध को भी व्यक्त करता है। अथर्ववेद के इस मन्त्रों में यह उल्लेख है कि सूर्य किरणों को मानव के रंग रूप एवं आयु के अनुसार प्रयोग विहित है। रोगी व्यक्ति को सूर्य के प्रत्यक्ष इस तरह बैठना चाहिए कि शरीर के भाग प्रत्यक्ष रूप से खुले हों या फिर उस पर महीन वस्त्र से ढक कर सूर्य की किरणों का सेवन करना चाहिए। प्रातः कालीन तथा सायंकालीन सूर्याभिमुख सन्ध्या विधान का भी यही रहस्य है।

अनुसूर्यमुदयतां हृद्योतो हरिमा च ते।
गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परिमसि।

परित्वा रोहितैर्वर्णैर्दीर्घायुत्वाय दध्मसि, यथायमरपा असद् अर्था अहरितो भुवत् ।।
यारोहिणी देवत्या गावो या उत रोहिणीः। रूपं रूपं वयोवयस्ताभिष्ट्वापरिदध्मसि ।।१५

अथर्ववेद के नवम काण्ड के सूक्त आठ में सूर्य के रश्मियों के द्वारा मानव के शिरोरोग, हृदय रोग की चिकित्सा का उल्लेख प्राप्त होता है-

सं ते शीष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः ।
उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्णों रोगमनीनशोडभेदमशीशम्।।'१६

अथर्ववेद के अनुसार अनेक प्रकार के व्याधियों का उपचार सौर चिकित्सा के माध्यम से सम्भव है। सौर चिकित्सा अनेक प्रकार के रोगों में लाभकारी है। सूर्य के तेज को अथर्ववेद में अमृत के समान माना जाता है। व्यक्ति के आरोग्य के लिए सूर्य का प्रकाश अनिवार्य है। सूर्य का प्रकाश शरीर को नीरोग बनाने का कार्य करता है। अथर्ववेद के आठवें काण्ड में सूर्य के प्रकाश की तुलना अमृत लोक से की गयी है। कहा जाता है कि सूर्य के अनुकूल प्रकाश में रहना अमृत लोक में रहने के बराबर माना जाता है जो इस मन्त्र में उल्लिखित है-

अन्तकाय मृत्यवे नमः अपाना इह ते रमन्ताम।
इहायमस्तु पुरुषः सहसुना सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके ।। १७

अथर्ववेद के नवम काण्ड के आठवें सूक्त में कुल बाईस मन्त्र प्राप्त होते हैं तथा इस प्रकार के व्याधियों का उल्लेख है-

शरीर की अकडन, शूल, ज्वर, शिरोरोग, कर्णरोग, रक्ताल्पता अन्धत्व, यक्ष्मा, योनिरोग, आन्त्र रोग, विषप्रभाव, हृद्रोग, उदररोग, जलोदर, हरिमा, चक्षुरोग, वातरोग, शोथ व्रण आदि रोगों का उल्लेख है।१८

5 जल चिकित्सा-

जल के द्वारा की जाने वाली चिकित्सा को जल चिकित्सा के नाम से जाना जाता है। वेदों में जल चिकित्सा के अनेक प्रमाण प्राप्त होते हैं। अथर्ववेद में भी जल चिकित्सा उल्लिखित है। अथर्ववेद में जल को औषधि मानने के अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं-

आप इद् वा उ भेषजीरापोअमीवचातनीः ।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुचन्तु क्षेत्रियात् ।।
अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम् ।। अपो याचामि भेषजम् ।।
अप्सु मे सोमो अन्ब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।।
आप पृणीत भेषजम् वरुथं तन्वे मम। आपः भिषजां सुभिषक्तमाः ।

आपो ह मध्यं तद् देवीर्देदन् हृद्धोतभेषजम् ।।
भषगम्यो भिषक्तरा आपः। अयक्ष्मकरणीयरपः ।। १९

जल प्रायः अनेक प्रकार के रोगों की औषधि है एवं रोगों में लाभप्रद है। जल अमृत है एवं जल में औषधि भी है। जल सबसे उत्तम वैद्य है। जल हृदयरोग की दवा है। जल वैद्यों में सुवैद्य है।

6 वात-प्राण चिकित्सा-

वेदों में वात प्राण चिकित्सा के अनेक प्रमाण प्राप्त होते हैं। अथर्ववेद में ही अन्यत्र वायु को रोगहर, भेषज एवं आरोग्य कहा गया है-

द्वाविमौ वातौ वात आसिन्धोरापरावतः।
दक्षं ते अन्य आवातु व्यन्यो वातु यद् रपः ।।
आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद् रपः।
त्वंहि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे।।२०

वात को विश्वभेषज, रोगापहारक, आरोग्यदाता, भेषज एवं त्राता आदि नामों से अभिहित किया जाता है। इस प्रकार इससे वात चिकित्सा स्पष्ट रूप से प्रामाणित होती है। अथर्ववेद के चौथे काण्ड के पूरे सूक्त में वात एवं सविता देवों को रोगों, रोगणणुओं का नाशक एवं आरोग्य प्रद कहा गया है। ऐसा "अप रक्षांसि शिमिदां च सेघतम्""सं ड्यूर्जया सृजथः सं बलेन""अयक्ष्मतातिम् मह इह धत्तम्"। "तौ नो मुचतमंहसः" इत्यादि वेद वाक्यों से सिद्ध होता है। अथर्ववेद में एक सूक्त प्राप्त होता है जिसका नाम है प्राण सूक्त, इसमें प्राण, प्राणशक्ति, प्राणायाम एवं प्राण चिकित्सा की गुण गरिमा का गान किया गया है। इस मन्त्र में प्राण शक्ति को नमस्कार करने से लेकर प्राण को औषध रूप में मानकर प्राण चिकित्सा से आरोग्य तथा दीर्घायु के प्रमाण प्राप्त होते हैं।२१

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।
यत्प्राण स्तनयित्नुनाभिक्रन्दन्दत् योषधिः ।।
अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन्।
आयुर्वेन प्रातीतरः सर्वा न सुरभीरकः ।। २०

अथर्ववेद में इस प्रकार प्राण तथा वात से नैरोग्य प्राप्ति, दीर्घायु, सुखी एवं स्वस्थ्य जीवन प्राप्ति के अनेक मिसाल प्राप्त होते हैं। शरीर में रोगरोधक शक्ति उत्पन्न होती है। मनुष्य स्वस्थ्य होने के साथ दीर्घायुष्य वाला होता है। जो प्राण शक्ति को सिद्ध करते हैं। वे ही इसके चमत्कारों से परिचित तथा लाभान्वित हो पाते है। ऋषि एवं मुनियों के आरोग्य तथा दीर्घायु होने का सबसे बड़ा रहस्य यही था।

7 मृच्चिकित्सा

मिट्टी के द्वारा की जाने वाली चिकित्सा को मृच्चिकित्सा कहा जाता है। वेदों में मृच्चिकित्सा के प्रमाण उपलब्ध हैं। इस प्रकार अथर्ववेद में भी मृच्चिकित्सा के उदाहरण उपलब्ध होते हैं। पञ्चतत्व चिकित्साओं में मृच्चिकित्सा का एक महत्वपूर्ण स्थान है। अथर्ववेद में पृथ्वी को माता कहा गया है-"पृथिवी माता"। * इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि पृथिवी माता के समान है। अथर्ववेद में एक स्थान पर उल्लेख है कि बिर्मी (वल्मीक) की मिट्टी आस्राव रोग (रक्त स्राव) की औषध है। २१

नीचैः खनन्त्यसुरा अरुःस्राणमिदं महत्। तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत् ।।
उपजीका उद्धरन्ति समुद्रादधि भेषजम्। तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत् ।।
अरुस्राणमिदं महत् पृथिव्या अध्युद्भृतम्। तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत् ।।

वल्मीकि मृत्तिका (दीपक द्वारा निर्मित बर्मी की मिट्टी) को आस्राव (रक्तस्राव आदि) की औषध बताया गया है। आस्राव अनेक प्रकार का होता है। रक्तस्राव के भी अनेक प्रकार हैं। नकसीर एवं शरीर में कहीं भी रक्त का अनुचित स्राव किसी भी कारण से हो, वह रोग है उसका उपचार वाल्मीकमृत से करने का विधान उल्लिखित है। इसे फोड़े पर भी लगाने का विधान है। 'अरुस्राणम्। फोड़े पर इसे लगाने से फोड़े का उपचार हो जाता है। नारायणी उपनिषद् में भी मिट्टी की चिकित्सा का विधान बताया गया है।

"मृत्तिके देहि में पुष्टिं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।।"२२

इससे यह स्पष्ट होता है कि मिट्टी पोषक तत्व है। इस मिट्टी में सब प्रकार के औषधीय गुण पाये जाते हैं । प्राकृतिक चिकित्सा में मृच्चिकित्सा ने कालान्तर में बहुत विकास किया है। आधुनिक युग में इसका विशेष प्रचलन देखने को मिलता है।

8 शल्य चिकित्सा

वेदों में शल्य चिकित्सा के अनेक आख्यान उपलब्ध होता है। अथर्ववेद में शल्य चिकित्सा के उदाहरण देखने को मिलते है। अथर्ववेद में शल्य द्वारा विष चिकित्सा की चर्चा की गयी है-

अपस्कम्भस्य शल्यान् निरवोचमहं विषम्।
शल्याद् विषं निरवोचं प्रा जनादुत पर्णधेः ।। २३

इस प्रकार के मन्त्रों से शल्य चिकित्सा से विषहरण किया जाता है। आज भी विषय को विशेष रूप से सर्प विष को शल्य चिकित्सा के द्वारा रक्त प्रवाह से दूर किया जाता है अथर्ववेद के दूसरे काण्डों में कटे-फटे एवं टूटे हुए अंगों का उपचार शल्य चिकित्सा के द्वारा एवं औषध के द्वारा करने का उल्लेख प्राप्त होता है।

सं ते माँसस्य ब्रिस्रस्तं समस्थ्यपि रोहतु।
मज्जा मज्जा सं धीयताँ चर्मणा चर्म रोहतु ।।
असृक् ते अस्ति रोहतु माँसं माँसेन रोहतु।
ऋभू रथस्येवाङ्नि सं दधत् परुषा परुः।।२४

इस प्रकार के मन्त्रों टूटे, फटे एवं कटे अंगों का उपचार शल्य चिकित्सा के द्वारा एवं औषध के द्वारा करने का उल्लेख प्राप्त होता है। अथर्ववेद में शल्य चिकित्सा के द्वारा मधु (मधु कशा) विद्या का उल्लेख प्राप्त होता है।

इस प्रकार मधु विद्या के तीन रूप प्राप्त होते हैं- रसायन, सन्धान एवं मृत संजीवनी। रसायन विद्या द्वारा नव शक्ति संचार का प्रयोग होता है। सन्धान शास्त्र में क्षत विक्षत अंगो को जोड़ना एवं मृतसंजीवनी में मृत प्राणी को पुनर्जीवन प्रदान करना होता है। इनमें कटे अंग को अथवा सिर से धड को अलग कर फिर सन्धान करने की अति रहस्यात्मक तथा रोमांचकारी विद्या है। ऋग्वेद में उल्लिखित है कि यह विद्या इन्द्र ने महर्षि दधीचि को और दधीति ने अश्विनी कुमारों को दी। उक्त प्रसंग में वर्णित है कि अश्विनी कुमारों ने अथर्वा के पुत्र दधीचि का सिर काट कर अलग रख दिया तथा उसके स्थान पर घोड़े का सिर जोड़ दिया। तब दधीचि ने अश्विनी कुमारों को मधु विद्या एवं अपिकक्ष्य विद्या का उपदेश दिया।२५

निष्कर्ष :

इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्पूर्ण अथर्ववेद में औषध चिकित्सा, मानस चिकित्सा, अग्नि-यज्ञ-चिकित्सा, सौर चिकित्सा, जल चिकित्सा, वात प्राण चिकित्सा, मृच्चिकित्सा, शल्य चिकित्सा, विष की चिकित्सा, स्पर्श चिकित्सा, पशु चिकित्सा एवं मन्त्र चिकित्सा आदि आयुर्वेद का स्वरूप अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण रूप से वर्णित है, जो मनुष्य को स्वस्थ्य बनाने में पूर्णरूप से सक्षम है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

१. अथर्व० संहिता ८/७/६
२. अथर्व० सं० ८/७/१०
३. अथर्व० संहिता ३/७/१
४. अथर्व० सं० ३/३१/१०
५. मैत्रायणी सं० ४/११
६. अथर्व० संहिता ६/११/१
७. चरक सूत्र ४५
८. अथर्व० सं० ८/२/२३.२४
९. अथव० संहिता ३/८/६, पृ० ९२
१०. अथर्व० सं० ८/२/३, पृ० ४२०
११. अथर्व० संहिता ३/११/८, पृ० ९७.९८
१२. अष्टांग चिकित्सा १ १७३
१३. अथर्व० सं० ६/१०६/३
१४. अथर्य) संहिता १०/४/२६
१५. अथर्व० सं० ५/२३/१३
१६. अथर्व० संहिता १९/३८/१.२
१७. अथर्व० प्रश्नो० १.५.१.६.१.८.१३.२.२३
१८. अथर्व० सं० १७/१/३, पृ० ७८७
१९ अथर्व० सं० ६/३२/१, पृ० ७६
२० अथर्व० सं० १/२२/१.३
२१. अथर्व० सं० ९/८/२२, पृ० ५०१
२२. अथर्व० सं० ८/१/१, पृ० ४१६
२३. अथर्व० सं० ३/७/५.१/४/४,१/५/४६
२४ अथर्व० सं०.४/१३/२४
२५. अथर्व० सं० ११/४/१.३.५